हिन्दी गद्य का विकास

आकाशवाणी

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

आकाशवाणी पुस्तकमाला

हिन्दी गद्य का विकास

जैनेन्द्रकुमार
उदयशंकर भट्ट
गुलाबराय
डा० सत्यप्रकाश
डा० विजयेन्द्र स्नातक

पब्लिकेशन्स डिवीज़न
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

दो शब्द

यद्यपि संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं की तुलना में हिन्दी गद्य अभी काफ़ी पिछड़ा हुआ है, न उसमें वह व्यंजना शक्ति है और न उतनी विविधता ही है, फिर भी इधर हिन्दी गद्य की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हुई है और उसके सम्बन्ध में कुछ कहना लहरें गिनने के समान है। इस पुस्तक में जो पांच वार्ताएं संगृहीत हैं उनके सम्बन्ध में यह दावा नहीं किया जा सकता कि उनमें हिन्दी गद्य का पूर्ण मूल्यांकन हुआ है। हिन्दी उपन्यास और कहानी पर श्री जैनेन्द्रकुमार की वार्ता तो बहुत ही अपूर्ण है, शायद उन्होंने विषय की विशालता को देखते हुए स्पष्ट और निर्दिष्ट बातें नहीं बताईं, पर इतना तो कहा जा सकता है कि ये वार्ताएं मिलकर हिन्दी गद्य की एक अच्छी भूमिका जरूर बन जाती हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य यह है कि पाठकों में और जिज्ञासा उत्पन्न हो और जिसे जिस सम्बन्ध में विशेष रुचि हो वह उस सम्बन्ध में और ब्योरेवार तथा व्यापक अध्ययन करे। यदि हमारे प्रकाशन का यह उद्देश्य सिद्ध होता है, जैसा कि देखने में ज्ञात होता है कि सिद्ध होगा तो यह समझना चाहिए कि हमारा यह प्रकाशन सार्थक है।

—सम्पादक

विषय सूची

: १ :

उपन्यास और कहानी

जैनेन्द्रकुमार

भाषा का उद्गम समाज के आरम्भ के साथ मानना चाहिए। इससे गद्य को उसी दिशा में विकसित होना है जिधर समाज के आदर्श की प्रतिष्ठा है। मनुष्य को ही भाषा प्राप्त हुई है, पशु-पक्षियों को नहीं। इससे स्पष्ट है कि भाषा जीवन विकास के प्रयोजन में से आई है। उस विकास के लक्ष्य को परस्पर में एकता की प्राप्ति कहा जा सकता है। अतः भाषा का उत्कर्ष इसमें है कि मनुष्य अपनी निजता उसमें इस तरह डाल दे कि उसके द्वारा वह शेष से तत्सम हो रहे। आपस के आदान-प्रदान की आवश्यकता में से उत्पन्न होकर जीवन की भाषा धीरे-धीरे परस्पर सहानुभूति को इतना व्याप्त और सघन करती जा रही है कि एक दिन हम सब आपसी भाव में एक बन सकेंगे, यह असम्भव नहीं दीखता। यों तो भाषा में गाली भी है, लेकिन वह भाषा की शोभा या सार्थकता नहीं है। साहित्य में उसके लिए स्थान नहीं है, और साहित्य में से भाषा अपनी सहज श्री और सफलता प्राप्त करती है। कारण साहित्य किसी एक की निजता को चहकाकर दूसरे की अस्मिता को दबाता नहीं है। प्रत्युत सबकी अहंताओं को गलाकर मिलाने का प्रयास करता है।

इतर प्राणियों को वाचा प्राप्त नहीं है, सो नहीं। आवाजें वे भी करते हैं। कह सकते हैं कि वे बोलते भी हैं। लेकिन उनकी बोली भाषा नहीं होती, उसमें शब्द और अर्थ नहीं होते। उस बोली द्वारा नाना प्रकार से वे अपनी वासनाएं ही एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। वासना वैयक्तिक है, इससे समाज नहीं बनता। शब्द और अर्थ निर्वैयक्तिक हैं और भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध से अतिरिक्त उनका उपयोग है। शब्दों में बंधी उन धारणाओं से समाज बनता और थमता है। वे शब्द परस्परता के सूचक हैं। इससे माना जा सकता है कि भाषा की उस स्थल पर सृष्टि हुई कि जब प्राणी निजता की वासना से उठकर परस्परता की भावना के तट तक आया।

भाषा के उदय के साथ ही साहित्य नहीं उपज आया होगा। निश्चय ही प्रथमतः भाषा का प्रयोग काम-काज में होता रहा होगा। काम-काज वह कि जहां

शब्द अपने अर्थ का ही बोध देता है। शुरू की भाषा में क्रियापद के साथ केवल वास्तुवाचक संज्ञाएं ही रही होंगी। भाववाचक शब्द काफी पीछे मनुष्य ने रचे होंगे। साहित्य के जन्म का काल स्यात वहीं से आरम्भ हुआ माना जा सकता है।

अर्थात सुन्दर गद्य का सौन्दर्य शब्दार्थ में ही नहीं होता। शब्द के अर्थ तक जो रहता है अधिकांश वह गद्य विचारणीय नहीं बनता। रोजमर्रा की बोलचाल की बातों को कौन मन तक लेता है? बोलचाल की भाषा यों कम महत्वपूर्ण है सो नहीं, पर महत्व उसमें तब पड़ता है जब उसके द्वारा बात नहीं, व्यक्ति समक्ष आता है। यानी जब बोली गई भाषा का सम्बन्ध किसी के निरे सीमित प्रयोजन से नहीं बल्कि मानव स्वभाव की ही व्यंजना से होता है। उपन्यास और कहानी में किसी पात्र के मुंह से निकली अशिष्ट भाषा भी, हो सकता है कि, जुगुप्सा नहीं अपितु आनन्द की अनुभूति दे। कारण इस प्रकार की भाषा के ऊपर से कुल मिलाकर जो भाव वहां से प्राप्त होता होगा वह उदात्त और सुन्दर है। इसी से कहते हैं कि साहित्य की भाषा कभी सीधे नहीं सदा व्यंजना द्वारा ही अपना अभि-प्राय देती है। यों भी कह सकते हैं कि भाषा कहकर इतना नहीं कहती, जितना अनकहा छोड़कर कहती है। संक्षेप में साहित्य की भाषा की शक्ति मौखर्य न होकर मौन है, व्यक्ति की स्पर्द्धा नहीं बल्कि उसकी व्यथा वह शक्ति है।

हिन्दी गद्य के विकास में, जैसे कि मेरी धारणा है इतर भाषाओं के विकास में भी, यह गति देखी जा सकती है। सफलता के लिए हर गद्य को वाग्मिता से सरलता और बनावट से सहजता की ओर बढ़ना होता है। ज्ञान से जीवन या कहिए कि पाठशाला के अनुशासन से घर के घरेलूपन की ओर उसे आना होता है। और गद्य की इस इष्ट प्रगति का दायित्व सर्वाधिक कहानी और उपन्यास पर है, यह कहने में कुछ अत्युक्ति नहीं है।

काव्य की भाषा इतनी आगे जा सकती है कि उसका भाव ध्वनि में से सीधे मिले और बीच में से अर्थ का लगभग लोप ही हो जाए। ध्वनि और छन्द की लय में अर्थहीनता और निरर्थकता को पहुंची हुई कविता के उदाहरण मिल सकते हैं। कविता गद्य में हो नहीं सकती, सो नहीं। गद्यकाव्य अर्थमर्यादा को लांघकर छन्द और लय में अपनी कृतार्थता देखने बढ़ सकता है। नाटक की भाषा में भी भाव और अर्थ का ऐक्य उतना अनिवार्य नहीं है। भाव तक पहुंचने के लिए वहां आंख के उपयोग की सुविधा है। अभिनय के माध्यम से नाटक का भाव मूर्त होता है। इसलिए हो सकता है कि अभिनय के अभाव में केवल भाषा द्वारा नाटक का मूल भाव प्रत्यक्ष न भी हो पर कहानी उपन्यास में भाषा सिर्फ अर्थ देकर सार्थक नहीं हो सकती। भाव को भी उसे युग-पत चित्रित और जागृत करते जाना होगा। इस आवश्यकता में से कहानी एक ऐसी कला बनती जा रही है जिसमे साधना

मुश्किल है। बोधतत्व और चित्तत्व का समीचीन समन्वय साधना परम दुर्वह कार्य है। उसमें बुद्धि के लिए अपने सहज दर्प का परिहार करना अपरिहार्य होता है। हृदय के सहज रागों में बुद्धि की विश्लेषणशीलता का सन्निवेश हंसी-खेल का काम नहीं है।

बहुत ज्यादा जानकारियों और खबरों से लदकर, या आत्यंतिक निश्चिति पहनकर भाषा लहरीली कैसे रहेगी? और जीवन कोई कानून या लबादा ओढ़कर सो कभी नहीं पाता है। ऐसे सोने वाली चीज तो मृत्यु है। लहराना जीवन का धर्म है। परिणामतः हम देखते हैं कि ज्ञान गरिमा से युक्त भाषा उत्कृष्ट कहानी का साथ नहीं दे पाती है, जैसे कि वह समर्थ जीवन को भी ढक नहीं पाती है।

विद्वान का गद्य इतना गरिष्ठ होता है कि वेग की संभावना वहां क्षीण हो रहती है। पर लेखक के लिए लाचारी है कि वह पुष्ट और दुरुस्त चाहे कम भी हो पर वेग और गतिशील अवश्य ही हो। निश्चय ही वेग उच्छृंखल होकर कहानी के प्रभाव को कम ही कर सकता है। कारण उच्छृंखलता वह है जहां भाव की तेजी अर्थ की मर्यादा को पीछे छोड़ जाती और भावना की निर्वैयक्तिकता वासना की निजता में परिणत हो रहती है। भावना जबकि एक को व्यापक करती है तब वासना उसे सीमित बनाती है। उससे सहानुभूति पर सीमा चढ़ती है और पाठक प्रभावित होने से अधिक चमत्कृत होकर रह जाता है। आवश्यक है कि गद्य अपने उत्कर्ष में स्थूल से सूक्ष्म के आकलन की ओर बढ़े। कारण जीवन की यही गति है। आलंबन तो सदा ही स्थूल होगा, अन्यथा हो नहीं सकता; किन्तु आकलन उत्तरोत्तर सूक्ष्म का हो इसी में भाषा का विकास समाया है। सूक्ष्म अपेक्षाकृत अव्यक्त है। वह रूप और वर्ण से अतीत है। एक शब्द में उसका गुण निर्गुणता है। मेरी मान्यता है कि भाषा की श्रेष्ठता का सबसे बड़ा लक्षण यह निर्गुणता ही है। भाषा मानो स्वयं कुछ रहे ही नहीं, केवल वह भाव के आश्रित हो। भाव के साथ इतनी तद्गत हो कि तनिक भी न कहा जा सके कि भाव उसके आश्रित है। अर्थात भाव पाठक को ऐसा सीधा मिले कि बीच में होने के लिए कहीं भाषा का उपयोग रहा है, यह तक उसे न अनुभव हो।

अब तक जो कहा उसमें काल की अपेक्षा नहीं है। विकास को काल की अपेक्षा में देखने में मैं असमर्थ रहता हूं। जो इतिहास के क्रम से देखा जाता है वह दूसरे प्रकार का विकास हो सकता है। राजनीतिक और सामाजिक वह होता हो तो मुझे आपत्ति नहीं। लेकिन साहित्य में व्यास और कालिदास को केवल इस कारण अविकसित माना जाए कि वह आज से कुछ सैकड़ा या हज़ार वर्ष पहले हुए, यह तर्क मेरे मन नहीं उतरता है। अर्थात भाषा समय के अनुसार चाहे अदलती-बदलती जाए, गद्य की शैली का विकास काल-क्रम के अनुसार मैं नहीं

देख पाता हूं। प्रेमचन्द की शैली आज के दिन के लिए इसलिए झूठी है कि वह स्वयं व्यतीत हो चुके हैं, ऐसा मैं नहीं मान पाता। अर्थात साहित्य में गद्य के विकास का मान लेखक के मनोभावों के उत्कर्ष की दृष्टि से देखना होगा। कदाचित गद्य को यह उसकी आत्मा की ओर से देखना माना जाए। मेरे लेखे वह दृष्टि उचित ही है, क्योंकि वह गुणापेक्षी है।

लेकिन हो सकता है कि उस शीर्षक के नीचे मुझ से कुछ दूसरी बातें सुनने की भी अपेक्षा हो। कुछ वह बातें जिनका सम्बन्ध कालक्रमागत इतिहास से हो।

हिन्दी अब भारत की राजभाषा है। अब कहने से मतलब कि कानूनन ऐसा है। प्रकृत में तो हम उसको राष्ट्रभाषा भी कह सकते हैं। कारण अंग्रेजी जिसके माध्यम से अभी तक भारत के विभिन्न प्रान्तों के लोग अपना मिला-जुला काम-काज चलाते हैं, राष्ट्र की भाषा नहीं है, और न हो ही सकती है। उसके अभाव में हिन्दी के सिवाय दूसरी क्या भाषा राष्ट्रीय कही जा सकती है। या तो ऐसा कहो कि राष्ट्र ही नहीं है। पर राष्ट्र हो और उसकी भाषा न हो यह नहीं हो सकता। ऊपर से ऐसा इस कारण लगता है कि भारत का जीवन कट-फट गया है। ऊपर का ऊपर है और नीचे का नीचे, और दोनों अलग हैं। नीचे तो राष्ट्रभाषा बिना बनाए बनती ही गई है। जीवन के तर्क में से अनिवार्य और अमोघ रूप से उसका निर्माण निरन्तर जारी ही रहा है। इस भाषा को जैसे हिन्दी वैसे हिन्दुस्तानी कहा जा सकता है। उसमें सब तरफ के प्रभाव, शब्द, शैली और व्यक्ति आ रहे हैं। हिन्दी के लेखक अब केवल उत्तर प्रदेश से ही नहीं आते, इतर प्रान्तों से भी बड़े मज़े में चले आते हैं। हिन्दी गद्य की शैली पर इसका खूब असर है। जान पड़ता है कि एक अराजकता फैल आई है, और शुद्ध और अशुद्ध हिन्दी में विवेक बढ़ाने वाली पुस्तकें और संस्थाएं भी बन और चल रही हैं। जो भी हो, हिन्दी गद्य इन चारों ओर से आने वाले प्रभावों से अस्पृष्ट नहीं रह सकता है। अनिवार्य है कि वह भारत के समन्वित जीवन को व्यक्त करने के लिए इन प्रभावों को आत्मसात करके यथेष्ट सामर्थ्य सम्पादन करे। कहानी और उपन्यासकारों में अपने गद्य की विशिष्ट शैली के लिए जिनके नाम लिए जा सकते हैं, वे दूर-दूर फैले हुए हैं। उनकी न एक जाति है, न एक धर्म, न समान उनकी अपनी निजी बोली है। किसी के घर भोजपुरी बोली जाती है, कहीं पंजाबी, कहीं बुन्देली, कहीं ब्रज इत्यादि। इन सभी प्रादेशिक बोलियों या भाषाओं का उन लेखकों के गद्य पर प्रभाव रहना अवश्यंभावी ही है। इस तरह हिन्दी की गद्य शैली को किसी निश्चित परम्परा में बिठाकर बखान देना संभव नहीं है। सियारामशरण गुप्त और बृन्दावनलाल वर्मा के बुन्देलखण्डी शब्द और मुहावरे आएंगे तो निश्चय ही वे हिन्दी गद्य के अपने हो रहेंगे। अज्ञेय में अंग्रेजी की भरमार है तो क्या किया जाए? उस शैली में से अंग्रेजियत को खुरचकर अलग तो नहीं

किया जा सकता । यशपाल संस्कृत के शब्दों को पंजाबी लिबास में पेश करेंगे तो संस्कृत की कितनी भी दुहाई देने से पाठकों का चाव उनके प्रति कम न होगा। जैनेन्द्र की गद्य की अशुद्धियों को स्वयं जैनेन्द्र की अशुद्धि मानकर न चला जाएगा तो कैसे होगा ? यदि जैनेन्द्र स्वयं शुद्ध नहीं है, और अशुद्ध होकर भी हिन्दी लिखने या बोलने के सम्बन्ध में कानूनन उस पर कोई रोकथाम नहीं डाली जा सकती है तो सिवाय इसके क्या उपाय है कि हिन्दी गद्य का विकास ऐसे अशुद्धों और अशुद्धियों को पेट में लेकर बढ़ता चले ।

इधर कुछ कृत्रिम गद्य भी पैदा हुआ । यद्यपि वह उल्लेखनीय नहीं होना चाहिए। वह अमुक धारणाओं और आग्रहों के प्रतिपादन अथवा पूर्ति में हुआ है । जीवन की आवश्यकता एवं अनुभूति में से नहीं सृजा गया । हिन्दी कहीं 'हिन्दुस्तानी' न बन जाए अथवा कि हिन्दी अवश्य ही 'हिन्दुस्तानी' प्रतीत हो, ऐसी अतिरिक्त चेतना रखकर भी जहां-तहां हिन्दी गद्य लिखा गया है । वह गद्य की शोभा अधिक बन सका है कि विडम्बना, इसके सम्बन्ध में कहने की आवश्यकता नहीं है । राजनीति की ओर से लिए गए ऐसे मताग्रहों के अतिरिक्त कुछ और भी गृहीत मान्यताएं रही हैं जो भाषा पर सवार होकर उसके प्रवाह को रोकती या उस पर आरोप बनती रही हैं । उस सब के उदाहरण यहां देना आवश्यक नहीं । यह गद्य ऊपर से शालीन और गम्भीर होकर भी भीतर से पोच और पीला होकर रह गया है ।

गद्य का वह विकास, जो हिन्दी के कथा साहित्य में से व्यक्त होता है, बतलाता है कि उसमें पालिश की कमी है, घिसा-मंजा वह काफी नहीं है । उस किस्म की लोच और नजाकत उर्दू में खूब देखी जा सकती है । लेकिन हिन्दी की ओर से उस वास्तविकता पर अधिक खिन्न होने की आवश्यकता भी मैं अनुभव नहीं करता हूं । जिस खूबी को मजलिसी कहा जा सकता है, जो दूसरे को रिझाकर इतनी खुश है कि उसको पाने की जरूरत उसके लिए फिर कम रहती है, उस मजलिसी खूबी के हक में हिन्दी गद्य को लानत देना मैं जरूरी नहीं समझता और न उसके लिए जरूरत से ज्यादा उर्दू की पीठ ठोकना मुनासिब समझता हूं । हिन्दी की गति की दिशा पर और उसकी शक्तिमत्ता पर मैं अपना संतोष प्रगट कर सकता हूं ।

: २ :

नाटक और गद्यकाव्य

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी का प्रारम्भिक गद्य जिन-जिन विषयों से निखरा है उनमें नाटक भी प्रमुख है और नाटकीय गद्य का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से होता है। वस्तुतः गद्य के विकास का स्रोत नाटकों में ही निखरता है और वह शैली भी उसी में ग्रहण करता है, क्योंकि नाटकों में विविध प्रकार के पात्रों द्वारा जीवन दर्शन होता है। तो निश्चय ही वे पात्र अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप भाषा बोलते हैं और उससे गद्य में बहुरूपता आती है। हरिश्चन्द्र के समय से इसीलिए हम नाटक में गद्य के विकास को स्वीकार करते हैं। हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों में प्रायः दो प्रकार की गद्य शैली दी है—एक तो वह है जो उन्होंने बंगला अथवा संस्कृत के नाटकों द्वारा प्राप्त की और दूसरी समाज सुधार सम्बन्धी। अनुवाद के गद्य में बहुरूपता, गम्भीरता, नाटकीय तत्वों से पूर्ण विकसित शैली थी, जिसमें उन्हें पात्रों की अभिव्यक्ति को प्रधानता देनी आवश्यक थी। इस शैली में गद्य का विकास दूसरी भाषा के आधार पर हुआ। और दूसरी शैली जिसके वे स्वयं निर्माता थे वह थी समाज सुधार तथा शृंगार सम्बन्धी गद्य। इसमें हास्य, व्यंग्य एवं विचारों को तीक्ष्णता देने वाला गद्य का रूप विकसित हुआ। साधारणतया भारतेन्दु के मौलिक एवं अनूदित नाटकों में भावावेश की शैली है। इस शैली में भारतेन्दु बाबू संवाद में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं और पदावली सरस तथा बोल-चाल की होती है। इसमें कहीं-कहीं अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है। और जहां किसी प्रकृतिस्थ भाव की व्यंजना वे करते हैं वहां उनकी भाषा कुछ गंभीर और सुन्दर भी हो गई है। एक उदाहरण लीजिए—

'चन्द्रावली' नाटक में कामिनी कहती है :

> 'चल तुझे हंसने की पड़ी है। देख, भूमि चारों ओर हरी-हरी हो रही है। नदी, नाले, बावली, तालाब, सब भर गए। पंछी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं।'

इसी का दूसरा उदाहरण 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक से :

'अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा के योग्य

लम्बी-लम्बी भुजा वाला कौन मनुष्य है। और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है।'

भावावेश की दूसरी शैली :

'न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका, तो यह कर्म करना पड़ा। हम क्या सोचें, अपनी अनाथ प्रजा को या दीन नातेदारों को या अशरण नौकरों को या रोती हुई दासियों को या सूनी अयोध्या को।'

इन उद्धरणों से ज्ञात होगा कि भारतेन्दु की भावावेशमयी शैली में जहां स्पष्टता, सरलता है वहां भावों के अनुसार भाषा का रूप वैविध्य भी है। आवेश में लिखी गई इस भाषा में स्थायी भाव पुष्ट होता है। फिर भी गद्य का यह प्रारंभिक रूप था, इसलिए इसमें अभिधा का रूप प्रत्यक्ष है। एक और उदाहरण से इस कथन की पुष्टि होगी :

'झूठे, झूठे, झूठे ही नहीं विश्वासघातक, क्यों इतनी-इतनी छाती ठोक और हाथ उठा-उठाकर लोगों को विश्वास दिया। आप ही सब मरते—चाहे जहन्नुम में पड़ते।'

फिर भी इतना मानना पड़ेगा भारतेन्दु का यह गद्य नाटकों की परम्परा को पूर्ण करने में बहुत सहायक हुआ। प्रतापनारायण मिश्र ने, जो इसी पीढ़ी के नाटक एवं व्यंग्य लेखक थे, गद्य की विनोदप्रिय शैली को विकसित किया और व्यंग्यपूर्ण वक्ता की उद्भावना भी की। इसी प्रकार की मिलती-जुलती शैली के लेखक थे बालकृष्ण भट्ट। बदरीनारायण चौधरी ने भी नाटक लिखे, किन्तु वे गद्य को कला के रूप में ग्रहण करने वाले लेखक थे। अनुप्रास, अनूठे पद-विन्यास की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। इनके 'भारत सौभाग्य' नाटक में मारवाड़ी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मराठी, बंगला सभी प्रकार का गद्य है। ला० श्रीनिवास दास ने भी तीन नाटक लिखे—'प्रह्लाद चरित्र', 'तप्ता संवरण' और 'रणधीर प्रेम मोहिनी'। दोनों नाटकों की भाषा साधारण थी पर तीसरे नाटक में श्रीनिवास दास ने अंग्रेजी की छाया लेकर उसका निर्माण किया। फिर भी भाषा के सम्बन्ध में भारतेन्दु से कोई अधिक विकास वे नहीं कर पाए। तोताराम कृत केन्टो वृत्तान्त नाटक की भाषा भी उसी श्रेणी की थी। वस्तुतः नाटकीय गद्य का जो परिष्कृत रूप भारतेन्दु बाबू की कृतियों में मिलता है उसी का प्रभाव कुछ हेर-फेर के साथ इस पीढ़ी के लेखकों में विकसित हुआ।

हिन्दी साहित्य के द्वितीयोत्थान काल में जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने नाटकों द्वारा गद्य को जहां बलवान अभिव्यक्तिपूर्ण बनाया वहां उन्होंने शब्द भंडार को लक्षणा, व्यंजना द्वारा प्राणवान भी बनाया। 'प्रसाद' जी मूलतः छायावादी कवि

थे। इसलिए उनके गद्य में भी अज्ञेय के प्रति लाक्षणिकता के विविध रूप प्रकट हुए। 'प्रसाद' में प्राचीन काल की परिस्थितियों के स्वरूप की मधुर भावना के अतिरिक्त भाषा को सजाने वाली चित्रमयी कल्पना और भावुकता की मात्रा प्रचुर परिमाण में होने के कारण गद्य में चमत्कार और सौन्दर्य भी आया तथा सर्वहृदयहारी पद्धति पर भाषा में मर्मव्यंजक अनूठापन भी। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित शब्द लेकर अपने नाटकों के पात्रों द्वारा वातावरण को जहां पुष्ट किया वहां नाटकों की सृष्टि में पात्रों एवं रूपकों को मौलिक दृष्टि भी प्रदान की। महाबलाधिकृत, परम भट्टारक, अश्वमेघ, पराक्रम, दण्डनायक, न्यायाधिकरण, दौवारिक, महास्थविर, विषयपति, महाश्रमण, महाप्रतिहार, महासंधिविग्राहक, स्कंधावार, नासीर, गरुड़ध्वज आदि शब्द भी गद्य को दिए। प्रसाद के समय में गद्य को संस्कृत की सहायता से थोड़े में अपनी अभिव्यक्ति करने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ। एक उदाहरण लीजिए :

> 'अहंकारमूलक आत्मवाद का खंडन करके गौतम ने विश्वात्मवाद को नष्ट नहीं किया। यदि वैसा करते तो उतनी करुणा की क्या आवश्यकता थी? उपनिषदों के 'नेतिनेति' से ही गौतम का अनात्मवाद पूर्ण है।'

स्पष्ट ही आत्मवाद विश्वात्मवाद इन शब्दों का दार्शनिक प्रयोग नाटक के क्षेत्र में नया है। फिर करुणा शब्द की लक्षणा द्वारा नाटककार ने बड़े शब्द करुणाभरी दृष्टि तथा महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण अध्यवसाय को एक शब्द में व्यक्त कर दिया है। नाटकों द्वारा गद्य के विकास में 'प्रसाद' दूसरे माइलस्टोन थे। इसके बाद नाटकों का गद्य अपने ढंग से विकसित हुआ। और आज नाटक की भाषा में जो विविधता, प्रयोगानेकता, सौन्दर्याभिव्यक्ति पाई जाती है वह आज के नाटककार की अपनी विशेषता है। सेठ गोविन्ददास का नाटकीय गद्य व्यावहारिकता, समाजवाद तथा गांधीवाद की सरस-सरल शैली का नमूना है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में तर्क-परिमार्जित, गम्भीर एवं सरल गद्य का रूप मिलता है। गोविन्दवल्लभ पंत के नाटकों की भाषा भावावेशमयी कठोर और कोमल है। उसमें उचित मात्रा में स्पष्टोक्ति का प्रभाव है। उग्र की भाषा तेजस्विनी है। मैंने भी नाटकों द्वारा गद्य के परिमार्जन में सहयोग दिया है। इधर एकांकी नाटकों में गद्य का रूप बड़े सुन्दर ढंग से निखरा है। डा० रामकुमार वर्मा की भाषा प्रौढ़ प्रसादगुण स्नात है। भुवनेश्वर प्रसाद कटु व्यंग्यमय, अश्क प्रवाहमय, जगदीशचन्द्र माथुर सौन्दर्य एवं भावमय, गणेशप्रसाद द्विवेदी भावुकतापूर्ण एवं भगवतीचरण वर्मा लाक्षणिक एवं हास्यपूर्ण गद्य के लिए प्रसिद्ध हैं। नाटकीय गद्य के विकास में विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी का सहयोग अपेक्षणीय है।

अब कुछ गद्यकाव्य पर भी विचार करें। गद्यकाव्य वस्तुतः हिन्दी में नवीन आयोजन है। छंदोबद्ध कविता की भावराशि को गद्य के द्वारा प्रस्फुटन करने की क्रिया को हम गद्यकाव्य कह सकते हैं। गद्यकाव्य में भावनाओं का प्राधान्य रहता है। इसमें लेखक की वैयक्तिक भावनाएं विभिन्न रूपों में व्यक्त होती हैं। लेखक अपने सुख-दुख, अपनी लगन, अपनी आशा-निराशा, ज्ञेय के प्रति तीव्र आकांक्षा तीव्र निष्पत्ति द्वारा विकसित होकर भावराशि को शब्दों वाक्यों की गद्यशृंखला में बांधकर पूर्णता प्राप्त करता है। साधारणतया गद्यकाव्य की भाषा गद्य ही होती है, किन्तु भावराशि काव्य की सी मनोहर हृदयग्राही ! एक तरह से यों समझना चाहिए गद्यकाव्य में उसकी आत्मा काव्यमय प्राणों को लेकर उद्भूत होती है। इसीलिए गद्यकाव्य में रूपक, अन्योक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा का चमत्कार होता है। गद्यकाव्य की रचना गद्य के पूर्ण विकास होने पर ही सम्भव है। हिन्दी गद्य काव्य का मूल वैसे तो हमें भारतेन्दु के 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में मिलता है, जिसमें उन्होंने नाटक को समर्पण करते हुए अपनी कृति का स्वीकर्ता भगवान को बनाया है। अस्तु गद्यकाव्य में इधर जो प्रयोग हुए हैं उनमें भाषा का प्रवाह साधारण गद्य से अधिक सम्पन्न, अधिक उत्कर्षमय और अधिक उद्दीपक हुआ है। और फिर गद्यकाव्य में संगीत का प्राणवान होना तो और भी अपेक्षित है। साधारणतया हमारे यहां गद्यकाव्य का मूल रूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि से प्रभावित होकर आया है। उनके गद्यकाव्य में काव्य का सा आनन्द और भावों में प्राणों की अन्विति पाई जाती है। उसी का यह रूप अपने ढंग से हिन्दी साहित्य में प्रस्फुटित हुआ। इस क्षेत्र में बहुत थोड़े लेखक सफलता प्राप्त कर सके हैं। फिर भी सर्वश्री राय कृष्णदास, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, दिनेशनंदिनी चोरड्या आदि कुछ लेखकों ने गद्यकाव्य में विशेष ख्याति प्राप्त की है। राय कृष्णदास का गद्यकाव्य संगीतमय कलापूर्ण एवं शब्दनाद सौन्दर्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने 'साधना', 'छायापथ' 'प्रवाल'—इन तीन काव्यों द्वारा अपने जीवन के अंतरंग प्राणों को उक्त रचनाओं में प्रतिबिम्बित किया है। श्री वियोगी हरि ने 'अन्तर्नाद', 'भावना' आदि कई गद्यकाव्य लिखे हैं। इन दोनों गद्यकारों की शैली में अन्तर है। वियोगी जी की भाषा जहां भावावेशमयी तथा निर्झर गति से प्रवाहित होती है वहां राय साहब की भाषा शान्त, स्निग्ध तथा प्रवाहमय है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के गद्यकाव्य उनके 'अन्तस्तल' में संगृहीत हैं। इनकी भाषा अधिक व्यावहारिक, अधिक संकेतात्मक और अधिक गतिशील है। वैसे भी वह 'अन्तस्तल' के गद्य काव्यों में शब्दनाद सौन्दर्य के साथ वैयक्तिक आत्मपुकार का रूप ग्रहण करके चली है। कहीं-कहीं आचार्य जी की भाषा भावनाओं के साथ दुरूह होकर रहस्यमयी भी हो गई है। फिर भी सब काव्य लेखकों की अपेक्षा चतुरसेन जी की काव्य भावना सामाजिक अधिक है। दिनेशनंदिनी चोरड्या के गद्य गीतों में राय कृष्णदास की सी

शान्त उपासना है। स्त्री होने के कारण उनके काव्य में आत्मसमर्पण का भाव अधिक जागरूक है। उन्होंने साधारण किन्तु अधिक चुटीले हृदयग्राही रूपकों द्वारा विश्व के अन्तस्तल में निवास करने वाले अज्ञेय के प्रति अव्यक्त आलम्बन की रहस्यमयी भावना को प्रेमिका के रूप में व्यक्त किया है। भवरमल सिंधी ने 'वेदना' नामक एक गद्यकाव्य उपर्युक्त शैली में लिखा है। इधर हाल में डा० रघुवीर सिंह के 'शेष स्मृतियां' तथा 'जीवन धूलि' नाम से दो गद्यकाव्य प्रकाशित हुए हैं।

डा० सिंह का गद्य कलात्मक होते हुए भी अधिक तर्कमय, अधिक विवेचनापूर्ण है। वे किसी संकेत को लेकर उसके छोर पर छोर खोलते चलते हैं। और अपने ज्ञेय के प्रति कभी-कभी स्पष्ट भी हो जाते हैं।

जैसा कि मैंने कहा हिन्दी का गद्यकाव्य भाषा के पूर्ण सौष्ठव और उसके विकास पर निर्भर करता है। जब भाषा में इतनी शक्ति आ जाती है कि वह अपनी आत्मिक, सामाजिक, राजनीतिक दृष्टियों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर सके तभी वह गद्य-काव्य के लिए उपयुक्त होती है। मूलतः नाटक तथा गद्यकाव्य में हिन्दी के गद्य साहित्य ने जो प्रौढ़ता प्राप्त की है वह अपने में पूर्ण होते हुए भी अभी तक अभि-व्यक्ति की महान क्षमता को प्राप्त करने में समय की अपेक्षा रखती है। अभी तक वह दृष्टिकोण के वैविध्य तथा शब्द शक्ति के बह्वर्थ की अपेक्षा रखता है। आज के जीवन में काव्य की अपेक्षा गद्य हमारे विचारों का अधिक प्रौढ़ वाहन है। इसलिए गद्य के विकास में उसकी प्रौढ़ता, अभिव्यक्ति की सरलता, सरसता और बह्वर्थता अधिक अपेक्षित है। फिर भी हम इस विकास क्रम के द्वारा उस स्थान तक पहुंच गए हैं, जहां से किसी भी भाषा को सार्वभौम पद प्राप्त हो सकता ।

: ३ :

निबन्ध और समालोचना

गुलाबराय

भारतीय समीक्षाशास्त्र में काव्य के अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनों ही आते हैं, इतना ही नहीं वरन गद्य को काव्य की कसौटी कहा गया है---गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति। गद्य की कई विधाएं हैं---निबन्ध, समालोचना, उपन्यास, कहानी, जीवनी गद्यकाव्य आदि। वैसे तो शैली का महत्व सभी रूपों में है किन्तु निबन्ध, समालोचना और गद्यकाव्य में उसका विशेष महत्व है। अन्य रूपों में तो गद्य माध्यम मात्र है किन्तु निबन्ध में हमको गद्य का निजी और निखरा हुआ रूप मिलता है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि गद्य यदि काव्य की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। निबन्ध की शास्त्रीय परिभाषा देना कुछ कठिन होगा किन्तु उसमें तीन बातें मुख्य होती हैं--- स्वतः पूर्णता, निजीपन और अपेक्षाकृत स्वच्छन्दता। यह स्वच्छन्दता संगति, क्रम और संगठन के नियमों का उल्लंघन नहीं करती।

यद्यपि हम किसी विषय की छोटी-सी पुस्तक को जैसे श्री वल्लभाचार्य के 'श्रृंगार रस मण्डन' को निबन्ध का पूर्व रूप कह लें तथापि यूरोप की भांति हिन्दी में भी निबन्ध साहित्य का विकास समाचारपत्रों के साथ ही हुआ। अंग्रेजी राज्य की कठोर वास्तविकताओं ने लोगों को रीतिकाल की श्रृंगारिक सौरभमयी मोह-निद्रा से जगा दिया। पाश्चात्य साहित्य के उत्तेजक सम्पर्क और आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज के धार्मिक आन्दोलनों ने विचार क्षेत्र में एक उथल-पुथल मचा दी थी और प्रेस ने गद्य के माध्यम द्वारा विचारों के प्रसार को सुलभ बना दिया। समाचारपत्रों का भी चलन प्रारम्भ हो गया था। इनकी उदरपूर्ति के लिए नित्य नई सामग्री की आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में निबन्ध साहित्य का जन्म और पोषण स्वाभाविक रूप से हुआ। निबन्ध साहित्य का जन्म हरिश्चन्द्र युग से होता है। उसका द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग में हुआ और शुक्ल युग में उसने प्रौढ़ता प्राप्त की।

हरिश्चन्द्र युग प्रारम्भिक युग था, उसमें बाल्यकाल की उछल-कूद और क्रीड़ा-कौतूहल का प्राधान्य था। वह क्रीड़ा-कौतूहल नितान्त बच्चों का खेल न था। उस समय कुछ तो फालतू उमंग का विलास दिखाई देता है किन्तु अधिकांश में

उनका स्वच्छद विचरण भी सोद्देश्य था। हास्य-व्यंग्य के सहारे व बहुत-सी समाज सुधार और राजनीतिक चिन्तन की धाराओं को प्रकाश में लाए। इस काल के लेखकों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', पंडित अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी प्रभृति प्रमुख हैं। उस समय निबन्धों के विषय में पर्याप्त वैविध्य था। उस काल के कुछ निबन्धों के शीर्षक सुनिए: भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित 'भारतवर्ष के सुधार का क्या उपाय है', 'सूर्योदय', 'अंकमय जगत' 'भूकम्प'; पंडित प्रतापनारायण मिश्र द्वारा लिखित 'समझदार की मौत', 'बात', 'वृद्ध मां', 'धोका', आदि; पंडित बालकृष्ण भट्ट लिखित 'आत्मनिर्भरता', 'कल्पना', 'संसार', 'कवि' और 'चितेरे की डांड़ामेड़ी', 'बातचीत', 'चन्द्रोदय', 'पंचमहाराज', 'नाक निगोड़ी बुरी बला है'। इसी प्रकार के साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक लेख उस समय के लेखकों ने लिखे। उनमें शैली का चलतापन और भावात्मकता का प्राधान्य था। विराम चिह्नों का विशेष बन्धन न था। मुहावरों का प्रचुरता से प्रयोग होता था। उन निबन्धनों में स्वच्छन्दता और निजीपन की मात्रा पर्याप्त थी।

द्विवेदी युग निबन्धों के विषय विस्तार के साथ भाषा के परिमार्जन का काल था। उन दिनों विराम चिन्हों का चलन बढ़ा और विषयों में वैज्ञानिक और पुरातत्व सम्बन्धी विषयों की ओर रुचि बढ़ी। हरिश्चन्द्र युग की अपेक्षा उस युग में भाषा का तो परिमार्जन हुआ किन्तु उसमें वह चलतापन और सुखद स्वच्छन्दता नहीं रही। द्विवेदी जी के वात्सल्यमय प्रोत्साहन के कारण बहुत-से नए लेखक भी प्रकाश में आए। इस काल के प्रमुख लेखक थे पंडित गोविन्दनारायण मिश्र, श्री बालमुकुन्द गुप्त, बाबू गोपालराम गहमरी और पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'। इस समय बेकन के निबन्धों का अंग्रेजी से और चिपलूणकर के निबन्धों का मराठी से अनुवाद हुआ। इस समय के निबन्धों में अपेक्षाकृत गाम्भीर्य भी आया। द्विवेदी जी के निबन्धों में, जैसे 'हंस का नीर-क्षीर विवेक', 'दमयन्ती का चकोपालम्भ', 'नल का दुस्तर दूत कार्य में', प्राचीन साहित्य से सम्पर्क के साथ संस्कृतगर्भित शैली की परिशुद्धता का भी प्राधान्य मिलता है। उनके लेखों में कुछ खोज और ज्ञान वृद्धि की भी प्रवृत्ति है। उस समय के लेखकों में बालमुकुन्द गुप्त के 'शिव शम्भु के चिट्ठों' में हरिश्चन्द्र युग की ही प्रतिध्वनि है। इन लेखों में ज्ञानवृद्धि तो थी किन्तु गहराई और विश्लेषण का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति आचार्य शुक्ल जी के निबन्धों ने की। उन्होंने मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के लेख लिखे। उनके मनोवैज्ञानिक लेख भी अधिकांश में साहित्यिक ही हैं। वे रस और भावों से सम्बन्ध रखते हैं। वे भावविषयक होते हुए भी भावात्मक नहीं वरन उच्च कोटि के विचारात्मक निबन्ध हैं। उनमें बड़ी बारीकी के साथ श्रद्धा-भक्ति, लोभ और प्रीति, लज्जा-ग्लानि आदि का भेद बतलाया गया है।

साहित्यिक निबन्धों में 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि बड़े महत्व के हैं। उनके बहुत से वाक्य सूक्ति का रूप धारण कर लेते हैं, जैसे : **'बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।' 'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।' 'श्रद्धा धर्म की पहली सीढ़ी है।'**

उनकी एक हास्यव्यंग्य पूर्ण उक्ति सुनिए : **'मोटे आदमियो ? तुम जरा-सा दुबले हो जाते, अपने अन्देशे से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।'**

आधुनिक युग में लेखों का विषय विस्तार बढ़ा किन्तु उच्च कोटि के लेखक अधिकांश में साहित्य और समालोचना सम्बन्धी विषयों की ओर अधिक झुके हुए दिखाई देते हैं। कुछ लोगों ने जैसे वासुदेवशरण जी ने कला और संस्कृति को भी अपनाया। आधुनिक युग के निबन्ध लेखकों में प्रमुख हैं—सर्वश्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, इलाचन्द्र जोशी, जयशंकर 'प्रसाद', नन्ददुलारे वाजपेयी, बनारसीदास चतुर्वेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, जैनेन्द्र, नगेन्द्र, सत्येन्द्र, प्रभाकर माचवे, सद्गुरुशरण अवस्थी। निबन्धों में वैयक्तिकता की दृष्टि से श्री सियारामशरण गुप्त, सुश्री महादेवी वर्मा, तथा मेरे वैयक्तिक निबन्ध पठनीय हैं।

अब हम गद्य की दूसरी विधा समालोचना के सम्बन्ध में विचार करेंगे। वैसे तो 'सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास' जैसी सूक्तियों में आलोचनात्मक निर्णयों के उदाहरण मिलते हैं किन्तु हिन्दी में आलोचना का वास्तविक विकास समाचार-पत्रों से ही हुआ है। पंडित बदरीनारायण चौधरी ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी', नाम की पत्रिका में कुछ आलोचनाएं निकालीं। स्वनाम धन्य आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'सरस्वती' द्वारा आलोचना साहित्य की खूब श्रीवृद्धि की, किन्तु उनकी अधिकांश आलोचनाएं निर्णयात्मक ही रहीं। द्विवेदी जी से स्वतन्त्र परन्तु उनकी शैली में मिश्रबन्धुओं ने भी गुण-दोष विवेचन का कार्य जारी रखा किन्तु उन्होंने परीक्षक बुद्धि से काम लेते हुए भी कवियों की विषयगत और भाषा सम्बन्धी विशेषताओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने देव को बिहारी से ऊंचा स्थान देकर एक विवाद उपस्थित कर दिया किन्तु उसका फल अच्छा हुआ। उससे तुलनात्मक आलोचना की नींव पड़ी। पंडित पद्मसिंह शर्मा की 'बिहारी सतसई' की भूमिका और कृष्णबिहारी मिश्र तथा लाला भगवानदीन जी की देव और बिहारी सम्बन्धी पुस्तकें तुलनात्मक आलोचनाओं के अच्छे उदाहरण हैं। यद्यपि पंडित पद्मसिंह शर्मा की आलोचनाओं में कहीं-कहीं महफिली वाह-वाही की प्रवृत्ति है तथापि उन्होंने ठोस पांडित्य का परिचय दिया है। धीरे-धीरे आलोच-नाओं के मान बदले। आलोचना का मान परीक्षक की भांति नम्बर न देकर उसकी सहृदयतापूर्ण व्याख्या हो गया जिससे कि उसकी भावधारा का उत्तम

से उत्तम रूप में उद्घाटन हो सके। आलोचना की इस धारा को अग्रसर करने वालों में आचार्य शुक्ल जी का नाम अग्रगण्य है। उनकी अधिकांश आलोचनाएं भूमिका रूप में निकली हैं। तुलसी, सूर और जायसी पर उनकी प्रतिभा का प्रकाश विशेष रूप से पड़ा है। आचार्य शुक्ल जी की प्रतिभा विषयगत थी। इसलिए यद्यपि उन्होंने इन कवियों की प्रतिभा को प्रकाश में लाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है तथापि वे 'गंगा गए गंगादास और जमुना गए जमनादास' नहीं बने। उन्होंने लोकमंगल की दृष्टि से तुलसी को शीर्षस्थान दिया है। शुक्ल जी ने किसी कवि के काव्य को समझाने के लिए उससे सम्बन्धित काव्य सिद्धान्तों का भी उद्घाटन किया है और स्वतन्त्र रूप से भी सैद्धान्तिक आलोचनात्मक लेख लिखे हैं। आलोचना को आचार्य शुक्ल जी की सबसे मूल्यवान देन यह है कि शास्त्रीय मूल्यों का आदर करते हुए भी उन्होंने आलोचना को उनमें सीमित नहीं रखा। उन्होंने लोकमंगल की भावना को महत्व दिया।

आलोचना के दूसरे उज्ज्वल नक्षत्र हैं बाबू श्यामसुन्दर दास जी। उन्होंने तथा उनके शिष्यों ने, जिनमें डाक्टर पीताम्बरदत्त वडथ्वाल मुख्य हैं, निर्गुण का पक्ष लिया। शुक्ल जी ने सगुण को महत्ता दी थी। बाबू जी ने और वडथ्वाल ने यद्यपि तुलसी पर भी ग्रन्थ लिखा है तथापि सैद्धान्तिक विवेचन बाबू जी ने जितना कबीर का किया उतना तुलसी का नहीं।

आजकल की अधिकांश आलोचनाएं व्याख्यात्मक और मूल्य सम्बन्धी होती हैं। उनमें थोड़ा-बहुत शास्त्रीय पुट भी रहता है। यद्यपि आजकल आलोचना का आदर्श तो भाव पक्ष, कला पक्ष और लोक पक्ष को समान रूप से आदर देने का है तथापि वैयक्तिक रुचि के अनुकूल इन पक्षों का न्यूनाधिक्य हो जाता है। किन्हीं में, जैसे शान्तिप्रिय द्विवेदी में, भावुकता का अधिक पुट रहता है और किन्हीं में—जैसे नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, माचवे प्रभृति में—बौद्धिकता का प्राधान्य रहता है। शास्त्रीयता को महत्व देते हुए भावुकता और लोकपक्ष को यथोचित मान देने वालों में पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, डाक्टर रामकुमार वर्मा, डाक्टर जगन्नाथप्रसाद शर्मा, सत्येन्द्र, नगेन्द्र, पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। ये आलोचकगण प्राचीन रस पद्धति के साथ वर्तमान शिल्प विधान को मिलाकर कवि की कृतियों की व्याख्या करते हैं। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बख्शी जी तथा डाक्टर रामकुमार वर्मा आदि ने सन्त साहित्य की भावधारा का रहस्य समझाने में सराहनीय कार्य किया है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा तथा उनकी शिष्य मंडली का ध्यान ऐतिहासिकता की ओर अधिक गया है। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी पर बड़ी खोजपूर्ण पुस्तक लिखी है। आजकल बहुत-सी पुस्तकों के आलोचनात्मक अध्ययन उपस्थित हुए हैं। इस प्रकार की पुस्तकें उपस्थित करने वालों में सर्वश्री रामरतन भटनागर, विश्वम्भर मानव, शिवनाथ प्रभृति प्रमुख हैं। इस प्रकार समालोचना का चतुर्मुखी विकास हो रहा है।

: ४ :

विज्ञान और दर्शन

डा० सत्यप्रकाश

हिन्दी गद्य शैली के विकास का प्रारम्भ यों तो लल्लूजीलाल के 'प्रेमसागर', इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' अथवा सदल मिश्र आदि की कृतियों से माना जाता है और ललित साहित्य की दृष्टि से यह ठीक भी है, पर फिर भी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में गद्य की परम्परा इससे कुछ पुरानी ही है। बिहारी, केशव, मतिराम आदि के ग्रन्थों की टीकाएं इन कवियों के जीवन काल के निकट से ही चली आ रही हैं, और ये टीकाएं ब्रजभाषा गद्य में हैं। इसी प्रकार कई दर्शन सूत्र ग्रन्थों की टीकाएं भी, विशेषतया विज्ञान भिक्षु आदि के भाष्यों की टीकाएं भी ब्रजभाषा के गद्य में उपलब्ध होती हैं। कुछ आयुर्वेद और ज्योतिष ग्रन्थों के भी खण्ड अनुवाद ब्रज की बोली में पाए जाते हैं। बहुत समय तक इस देश की परिपाटी की पाठशालाओं में संस्कृत माध्यम के साथ-साथ ब्रजभाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के ये ग्रन्थ शिष्यों को पढ़ाए जाते रहे। यदि इस बीच में अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षण की प्रथा इस देश में प्रारम्भ न हो जाती, तो हम अपनी गद्य शैली में समस्त शिक्षण विषयों का प्रबन्ध करते। अंग्रेजी माध्यम ने दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी गद्य को पचास वर्ष तक पल्लवित न होने दिया।

हिन्दी गद्य शैली का परिमार्जित रूप ललित साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कृतियों में मिलता है। इसी प्रकार से ठोस विचारशील सांस्कृतिक साहित्य में हिन्दी गद्य का उत्कृष्ट स्वरूप महर्षि दयानन्द के 'सत्यार्थप्रकाश' आदि ग्रन्थों में मिलता है। भारतेन्दु और दयानन्द दोनों समकालीन थे। भारतेन्दु का स्वर्गवास सम्वत १९४१ में और महर्षि दयानन्द का सम्वत १९४० में हुआ था। महर्षि दयानन्द का 'सत्यार्थप्रकाश' १९वीं शताब्दी के हिन्दी गद्य का सबसे बड़ा ग्रन्थ है। आकार की दृष्टि से तो यह सबसे बड़ा है ही, जितनी लोकप्रियता इस ग्रन्थ को प्राप्त हुई, उसकी समकक्षता में हिन्दी गद्य के किसी और ग्रन्थ को अब तक रखा नहीं जा सकता। कोई भारतीय भाषा नहीं, जिसमें हिन्दी के इस गद्य ग्रन्थ के अनुवाद न हुए हों। और यूरोप की भी प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। यह गौरव हिन्दी गद्य के और किसी ग्रन्थ को नहीं प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ ने हिन्दी के दार्शनिक ग्रन्थों की शैली को जन्म दिया। फलतः हिन्दी खड़ी बोली में धीरे-धीरे समस्त उपनिषदों के भाष्य आरम्भ हुए और षड्दर्शनों के अनुवाद भी हुए। इन भाष्यकर्ताओं में आर्यमुनि, तुलसीराम, दर्शनानन्द, राजाराम, शिवशंकर काव्यतीर्थ से लेकर नारायण स्वामी तक के ग्रन्थों की प्रधानता रही। यह भी बड़ा आवश्यक था कि दर्शनों और उपनिषदों के सभी सम्प्रदायों के भाष्य हिन्दी गद्य में हो जाएं। उपनिषदों के शांकर भाष्य के अनुवाद प्रकाशित हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं। ब्रह्मसूत्र का शांकर भाष्य----'शारीरिक भाष्य' हिन्दी गद्य में प्रकाशित हुआ है। आवश्यकता यह है कि इसी भांति रामानुज, मध्व, निम्बार्क आदि आचार्यों के वेदान्तदर्शन के भाष्यों के अनुवाद भी हिन्दी में प्राप्त हो जाएं। जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि दर्शनों की मूल प्रामाणिक पुस्तकों के अनुवाद भी हिन्दी में प्राप्त होने चाहिए। इनके मूल ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अर्ध-मागधी और पाली में हैं। जैन दर्शनों में से कुछ का अनुवाद हिन्दी में मिलता है पर फिर भी अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों की ओर अभी ध्यान नहीं गया है। उमास्वामि, सिद्धसेन दिवाकर, विमल सूरि और देवनद्रि के ग्रन्थ हिन्दी में अवश्य होने चाहिएं।

यूरोपीय दर्शन हमारे विश्वविद्यालयों का मुख्य विषय प्रारम्भ से ही रहा है, पर हिन्दी गद्य की शैली का विकास इस दर्शन की उपयोगिता की दृष्टि से अभी नहीं हो पाया है। पांडेय आचार्य रामावतार शर्मा ने बहुत दिन हुए यूरोपीय दर्शन नामक एक छोटी-सी परिचयात्मक पुस्तक लिखी। तब से अब तक इस विषय की दो-तीन पुस्तकें ही और निकल सकी हैं, जो यूरोपीय दर्शन की झांकी मात्र कराती हैं। यूरोपीय तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान पर छोटी-छोटी पुस्तकें निकलीं, इनका विस्तार क्षेत्र बी० ए० के विद्यार्थी के लिए भी समुचित नहीं है। सुधाकर, श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल और प्रो० पांडेय के मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान के ग्रन्थ इस ओर मार्ग-दर्शन अवश्य कर रहे हैं, पर फिर भी हमारे गद्य को इस दृष्टि से परिपुष्ट होना है। आवश्यकता तो यह है कि काण्ट, बर्कले, हीगल, ह्यूम, लाक के मूल ग्रन्थों से लेकर आधुनिक दर्शन तक के प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुवाद हिन्दी में हों। दर्शन के इस साहित्य के लिए हमें अपने गद्य में नई अभिव्यंजना उत्पन्न करनी पड़ेगी। अपने देश के प्राच्य दर्शनों के योग्य हिन्दी गद्य की शैली का मार्गदर्शन तो दयानन्द और उनके अनुगामी षड्दर्शनों के भाष्यकारों ने किया। पर काण्ट के दुरूह ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद के लिए हमें अपनी भाषा शैली को दूसरे ही ढंग पर परिमार्जित करना होगा। प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनों के समन्वय की भी आवश्यकता है, अर्थात अपने देश के प्राच्य सिद्धान्तों को पाश्चात्य पद्धति पर व्यक्त करना है। इस युग के आस्तिक व्यक्ति को अपनी आस्तिकता में निष्ठा होने के लिए इस युग के नए तर्क चाहिए। बीसवीं शताब्दी के

अद्वैतवादी की तृप्ति शंकर के समय के अद्वैतवाद से नहीं हो पाती है। हिन्दी गद्य में इस दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों की ओर कम ही ध्यान गया है। पांडेय रामावतार शर्मा उदार और क्रान्तिकारी विचारों के पोषक थे। ला० कन्नोमलजी ने भी अपने लेखों और पुस्तिकाओं द्वारा इस ओर कुछ काम किया। श्री गुलाबराय जी की तर्कशास्त्र आदि पर पुस्तकें इस प्रकार के साहित्य में स्मरणीय रहेंगी। डा० भगवानदास ने कुछ मार्गदर्शन किया। गंगाप्रसाद उपाध्याय के आस्तिकवाद, अद्वैतवाद, जीवात्मा और शंकर भाष्यालोचन ने एक नई शैली का उद्घाटन किया। नारायण स्वामी के 'आत्मदर्शन', 'मृत्यु और परलोक' आदि अध्यात्म ग्रन्थों ने विषयों को विशेष रूप से रखा। सम्पूर्णानन्द के 'चिद्विलास' ने विचार-विमर्श की एक मौलिक परिपाटी का प्रदर्शन किया। राहुल सांकृत्यायन जी की कृतियों ने हिन्दी दर्शन को एक नई झांकी दी। इन सब रचनाओं से हमारा हिन्दी गद्य परिपुष्ट होता आ रहा है।

दर्शन और विज्ञान का अटूट सम्बन्ध है। अन्ततोगत्वा दोनों एक हैं। यों भी विज्ञान द्वारा जिन विषयों का प्रत्यक्षीकरण होता है, उनके आधार पर ही दर्शन अपनी रूपरेखा का निर्माण करता है। यूरोप में विकासवाद एवं भौतिक और रसायन की नई खोजों ने १८वीं शताब्दी से लेकर आज तक की दार्शनिक खोजों को बराबर प्रभावित किया है। बीसवीं शताब्दी का दर्शन साहित्य, और विशेषतया मनोविज्ञान केवल कल्पना की वस्तु नहीं, प्रत्युत प्रयोग और आंकड़ों की वस्तु बन गया है। अपराधशास्त्र की विवेचना ने आचारशास्त्र को भी परिवर्तित किया है। विज्ञान और दर्शन का यह सम्बन्ध हमारे देश की तो पुरानी परम्परा रही है। भेद केवल इतना है कि पहला युग यदि दर्शन प्रधान था तो अब विज्ञान प्रधान है।

विज्ञान ने प्रत्येक युग में एक नई भाषा शैली को जन्म दिया। साधारणतया साहित्य की भाषा भावना प्रधान होती है, पर जब किसी विषय का प्रतिपादन शास्त्रीय ढंग पर करना होता है, तो भाषा विश्लेषणात्मक हो जाती है। शास्त्रीय विषयों में हमें अपने शब्दों को नई भावनाएं देनी पड़ती हैं। साधारण भाषा में हय, घोटक, तुरंग और अश्व परस्पर पर्याय माने जाते हैं। पर अश्वशास्त्र का विवेचक इन सब पर्यायों का प्रयोग अलग-अलग जाति के घोड़ों के लिए कर सकता है। यही बात साधारण और शास्त्रीय भाषाओं की शैली में भी है। पिंगल के छन्द सूत्रों और पाणिनी के व्याकरण सूत्रों की रचना गृह्य सूत्रों से विभिन्न शैली की है। सूर्य सिद्धान्त के श्लोकों में गणित के नियमों का प्रतिपादन जिस संकेत शैली पर है, वह शैली रामायण और महाभारत के श्लोकों से सर्वथा भिन्न है। बिल्कुल यही बात आज के गद्य साहित्य में भी है। हिन्दी गद्य में लिखी

गई बीजगणित, जामिति या रसायन की पुस्तक अपनी शैली में उपन्यास और एकांकियों की भाषा से सर्वथा भिन्न होती है। उपन्यास और गल्पों की गद्य शैलियों का मार्ग-दर्शक एक विशिष्ट कालाकार होता ह, और ठीक उसी भांति वह व्यक्ति भी महान कलाकार है, जिसने अपनी भाषा में विज्ञान के विभिन्न अंगों को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान की। वैज्ञानिक विषयों की दृष्टि से हिन्दी गद्य अभी अपनी परिपक्व अवस्था को नहीं पहुंच पाया है। यूरोप की भी तो सभी भाषाएं इस दृष्टि से अभी परिपक्व नहीं हो पाई हैं। जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं का गद्य बहुत कुछ प्रौढ़ हो गया है, पर रूस और डेनमार्क आदि की भाषाएं अब भी अपरिपक्व हैं। एशिया में जापानी साहित्य ही सबसे अधिक आगे बढ़ सका है। आज से २५ वर्ष पूर्व ही वहां उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य की सृष्टि जापानी भाषा में आरम्भ हो गई थी, और उसकी प्रगति भी वेग से बढ़ी। उसका कारण यह था कि जापान में किसी एक यूरोपीय भाषा का एकमात्र प्रभुत्व न था। वहां जर्मन, अंग्रेजी और फ्रेंच तीनों को समकक्ष रखा जाता रहा है और अपनी जापानी भाषा को वहां के निवासियों ने सर्वोपरि स्थान दिया। हमारे देश की परिस्थितियां स्पष्टतया भिन्न थीं। कहने को तो हमारे वैज्ञानिक साहित्य का कुछ-न-कुछ हिन्दी में लिखना-पढ़ना उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में होने लगा। गणित की पुस्तकें हिन्दी में लिखी गईं। आगे चलकर पं० सुधाकर द्विवदी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने चलनकलन, चलराशिकलन और समीकरण मीमांसा, तीनों उच्च कोटि की पुस्तकें हिन्दी में लिखीं। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना होने पर हिन्दी पुस्तकों द्वारा वैज्ञानिक विषयों के शिक्षण का कार्य पहली बार आरम्भ हुआ और शालोपयोगी कई रसायन और भौतिक विज्ञान की पुस्तकों की रचना हुई। इनके लेखकों में प्रो० महेशचरण सिंह और रामशरणदास का नाम उल्लेखनीय रहेगा। प्रयाग में स्वर्गीय डा० गंगानाथ झा और प्रो० रामदास गौड़ और पं० सुन्दरलाल जी आदि की प्रेरणा से विज्ञान परिषद की स्थापना हुई, और लगभग ३६ वर्ष से इस परिषद ने 'विज्ञान' नामक जो पत्रिका प्रकाशित की, उसने न केवल वैज्ञानिक विषयों के गद्य लेखकों को जन्म दिया, प्रत्युत हजारों पृष्ठों की वैज्ञानिक सामग्री हिन्दी को प्रदान की। ललित साहित्य के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी जी की 'सरस्वती' ने जो कार्य किया, विज्ञान के क्षेत्र में आचार्य रामदास गौड़ की 'विज्ञान-पत्रिका' ने भी वही कार्य किया। आचार्य गौड़ हिन्दी साहित्य के प्रतिभाशाली विद्वान थे, और उन्होंने विज्ञान के विभिन्न अंगों की भाषा शैली को विकसित रूप प्रदान किया। गद्य और पद्य दोनों पर उनका समाधिकार था। उनकी गद्य शैली इतनी प्रांजल थी कि विज्ञान के दुरूह विषयों को उन्होंने जनोपयोगी बना दिया। उनका लिखा 'विज्ञान हस्तामलक' वैज्ञानिक गद्य का आदर्श और प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहेगा। हिन्दी वैज्ञानिक गद्य के दूसरे कलाकार

डा० गोरखप्रसाद हैं। दुरूहताहीन यथार्थता, जो वैज्ञानिक विषयों के लिए परमावश्यक है, डा० साहब के ग्रन्थों और लेखों की विशेषता है। सौर परिवार, फोटोग्राफी, घरेलू नुस्खे, घरेलू डाक्टर और गणित की पुस्तकें इन सबके द्वारा विज्ञानोपयोगी आदर्श गद्य का प्रदर्शन हुआ है।

वैज्ञानिक हिन्दी साहित्य की सृष्टि का श्रेय नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी को विशेष रूप से है। यों तो मनोरंजन पुस्तकमाला में वैज्ञानिक विषयों की दो-चार पुस्तकें निकली हीं, वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में इसने जो कार्य किया, उसका ऋणी हिन्दी जगत सदा रहेगा। अब तो इस क्षेत्र में अनेक संस्थाएं काम करने लगी हैं, पर मार्ग-दर्शन का श्रेय काशी की इस संस्था को ही है। वैद्यक और चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना में डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा, और डा० त्रिलोकीनाथ, अत्रिगुप्त आदि व्यक्तियों के ग्रन्थों ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। रेलवे विज्ञान, यांत्रिक चित्रकारी आदि के सम्बन्ध में पं० ओंकारनाथ शर्मा के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। डा० निहालकरण सेठी ने भौतिक विज्ञान और प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा ने रसायन की अच्छी सेवा की। इन दोनों व्यक्तियों की गद्य शली अपने-अपने विषयों के लिए आदर्श रहेगी। आशा की जाती है, कि निकट भविष्य में हमारा वैज्ञानिक साहित्य द्रुत गति से अग्रसर होगा, और हमारे गद्य को स्थायी रूपरेखा प्राप्त होगी।

: ५ :

जीवनी और इतिहास

डा० विजयेन्द्र स्नातक

हिन्दी गद्य का प्रारम्भ विक्रम की १७वीं शताब्दी में व्रजभाषा के द्वारा होता है। व्रजभाषा उस युग की साहित्यिक काव्य भाषा थी। भक्ति काल और रीति काल के प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने व्रजभाषा को ही अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि गद्य लिखने में भी इसी भाषा का व्यवहार हो। फलतः हिन्दी गद्य साहित्य की उपलब्ध पुस्तकों में इसी भाषा का प्रयोग है। गोरखपन्थी ग्रन्थों में भी व्रजभाषा का ही प्रयोग है जिसका रचना काल १४०० विक्रमी सम्वत के आस-पास है। हिन्दी गद्य के विकास में जहां व्रजभाषा का प्राधान्य था वहां जीवनी या इतिहास का भी प्रारम्भ हुआ। १७वीं शताब्दी में रचित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में वैष्णव भक्तों की जीवनी प्रस्तुत की गई है। 'चौरासी वष्णवों की वार्ता' के विषय में कहा जाता है कि यह वल्लभाचार्य जी के पौत्र गोसाईं गोकुलनाथ जी की लिखी हुई है। किन्तु इसमें गोकुलनाथ जी के प्रशंसापरक वाक्यों तथा प्रसंगों की इतनी भरमार है कि उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह उनके किसी शिष्य की रचना है। इस ग्रन्थ में वैष्णव भक्तों और आचार्य जी की महिमा प्रकट करने वाली कथाएं संकलित हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की भाषा तथा शैली को देखकर लगता है इसका रचना काल बाद का है। औरंगजेब के समय इसकी रचना हुई प्रतीत होती है। इसकी भाषा तथा वर्णन शैली तत्कालीन व्रज-भाषा गद्य का एक सुन्दर निदर्शन है। बोलचाल की भाषा में ही यह गद्य लिखा गया है।

उसके बाद व्रजभाषा प्रभाव के युग तक अर्थात आधुनिक खड़ी बोली गद्य के आविर्भाव काल तक जीवनी या इतिहास विषय पर व्रजभाषा गद्य में कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया। यों कविता में अवश्य जीवन चरित शैली पर ग्रन्थ रचना हुई किन्तु वह गद्य न होने के कारण हमारी विषय-सीमा से बाहर है। नाभादास का 'भक्तमाल' और बाबा वेणीमाधव दास कृत 'गोसाईं चरित' को इस प्रकार की जीवनियों में प्रमुख स्थान दिया जाता है। आत्मचरित के प्रसंग में बनारसीदास

जैन लिखित 'अर्ध कथानक' का उल्लेख भी करना आवश्यक है, यद्यपि वह ग्रन्थ पद्य में है गद्य में नहीं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवीन युग के सन्देशवाहक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की सीमाओं का विस्तार किया और प्रायः सभी उपेक्षित विषयों द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया। भारतेन्दु काल में जीवनी और इतिहास विषय पर भी गद्य में पुस्तकें निर्मित हुई। भारतेन्दु बाबू ने 'चरितावली' नामक जीवन-चरित सम्बन्धी पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने नवीन युग के महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनियां प्रस्तुत कीं। 'पंचपवित्रात्मा' नाम से भारतेन्दु बाबू ने इस्लाम धर्म के प्रवर्तक और पूज्य पांच महापुरुषों की जीवनी प्रस्तुत की। इन पुस्तकों के लिखने में बाबू जी ने पर्याप्त परिश्रम और खोज से काम लिया। खड़ी बोली गद्य के प्रसार के साथ उस युग में और भी लेखकों का ध्यान जीवनी और इतिहास लिखने की ओर गया था किन्तु प्रामाणिक रूप से उत्तम कोटि का साहित्य इस दिशा में प्रस्तुत नहीं किया गया था। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने कुछ शालोपयोगी इतिहास की पुस्तकें लिखी थीं जो बाद में उर्दू के प्रभाव में आकर उर्दू प्रधान गद्य में परिवर्तित हो गई। काशीनाथ खत्री की लिखी 'हिन्दुस्तान की अनेक रानियों का जीवनचरित' और कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'मीराबाई का जीवनचरित्र', 'महाराज विक्रमादित्य का जीवनचरित्र', कविवर 'बिहारी और सूरदास के जीवनचरित्र' इस दिशा में अच्छे प्रयत्न कहे जा सकते हैं। रमाशंकर व्यास ने नैपोलियन बोनापार्ट का जीवनचरित लिखा जो उस युग की अच्छी जीवनी है। श्री प्रतापनारायण मिश्र ने 'चरिताष्टक,' बालमुकुन्द गुप्त ने 'हरिदास गुरयानी' तथा जगन्नाथ दास रत्नाकर ने गोपकवि का चरित लिखा। इस युग में मुंशी देवी प्रसाद ने ऐतिहासिक खोज के आधार पर राजस्थान के वीर राजा और रानियों की जीवनियां लिखीं। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने सन् १९०१ में 'निजवृत्तान्त' नाम से अपनी आत्मकथा की रचना की जो उस युग में नई चीज समझी गई।

भारतेन्दु युग के जीवनी साहित्य में दो प्रकार की रचनाएं थीं---एक तो अलौकिक रूप से चित्रित महापुरुषों के जीवन और दूसरे लौकिक रूप से ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर लिखित जीवनचरित। इन जीवनचरितों में व्याख्यानात्मक दृष्टिकोण का प्रायः अभाव ही परिलक्षित होता है। भारतेन्दु युग के जीवनी एवं इतिहास लेखकों में सर्वश्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मुंशी देवीप्रसाद, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि का हिन्दी संसार चिर कृतज्ञ रहेगा। इसी युग में कुछ जीवनचरितों के बंगला, उर्दू और अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद भी हुए। इस युग के समीप ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा सम्पादित 'शिवसिंह सरोज' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें लगभग एक सहस्र कवियों

की जीवनियां संकलित हैं। यद्यपि समस्त सामग्री को हम प्रामाणिक नहीं कह सकते फिर भी परवर्ती लेखकों को इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। हिन्दी साहित्य के इतिहास की नींव भी इसी युग में पड़ी।

भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी में इतिहास लिखने की प्रवृत्ति और अधिक बढ़ी और जिसके फलस्वरूप द्विवेदी युग के आते-आते कई विद्वानों ने प्रामाणिक रूप से इतिहास लिखने के लिए कलम उठाई। राजस्थान का इतिहास मुगल साम्राज्य के समय से ही भारतीय हिन्दू वीरों के हृदय में जीवन, जागृति, बल और बलिदान की स्फूर्तिदायक भावना उत्पन्न करने में समर्थ रहा था। कर्नल टाड लिखित 'राजस्थान' के आधार पर प्रारम्भ में कई इतिहास लेखकों ने राजपूताने का इतिहास लिखा। मिश्रबन्धुओं द्वारा लिखित 'भारतवर्ष का इतिहास' 'रूस और जापान का इतिहास' इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न हैं। श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी लिखित 'मुसलमानी राज का इतिहास' इसी काल में दो भागों में प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध इतिहास एवं पुरातत्व वेत्ता महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का नाम प्रामाणिक इतिहास लेखकों में मूर्धन्य है। 'सोलंकियों का इतिहास', 'उदयपुर का इतिहास' तथा 'राजस्थान का विशद इतिहास' ओझा जी की विद्वत्ता के परिचायक तथा हिन्दी भाषा के अमर रत्न हैं। श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने भी इसी समय 'भारत के प्राचीन राजवंश'; चन्द्रराज भंडारी ने 'भारत के हिन्दू सम्राट'; सुखसम्पत्तिराय भंडारी ने 'जगद्गुरु भारतवर्ष'; और श्री सम्पूर्णानन्द ने 'सम्राट हर्षवर्धन' नामक प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे। श्री शिवनन्दन सहाय भी इतिहास प्रेमी लेखक थे। उन्होंने बाबू 'हरिश्चन्द्र का जीवन चरित'; 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित' और 'चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित' शोध के आधार पर प्रस्तुत किया। गुरुकुल कांगड़ी के इतिहास अध्यापक डा० बालकृष्ण तथा आचार्य रामदेव जी ने भी भारतवर्ष के अतीत गौरव की प्रामाणिक शृंखला प्रस्तुत करने वाले इतिहास ग्रन्थ लिखे। इन इतिहासों में भारतीय दृष्टिकोण को प्रधानता दी गई है। आर्यसमाज की विचारधारा का समर्थन इन इतिहासों का एक लक्ष्य था। काशी विद्यापीठ से भी भारतवर्ष का एक इतिहास प्रकाशित हुआ जिसमें भारतीय इतिहास की सामग्री की छानबीन नवीन दृष्टि से की गई थी। भाई परमानन्द ने योरोप का इतिहास हिन्दी में बड़ी ही गम्भीर शैली में लिखा। श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय के योरोपीय इतिहास शालोपयोगी होने के साथ-साथ जनसाधारण के भी लाभ की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। ओझा जी का 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' तथा मिश्रबन्धुओं का 'बुद्ध पूर्व का भारत' ऐतिहासिक क्षेत्र की उच्च कोटि की पुस्तकें हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने भारतीय इतिहास के क्षेत्र में अपनी सूझ, लगन और खोज से एक प्रकार का युगान्तर उत्पन्न किया। 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' तथा

'भारतीय इतिहास का भौगोलिक ग्राधार' ग्रापकी उच्च कोटि की रचनाएं हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार की ग्रनुसन्धान शैली पर प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० काशीप्रसाद जायसवाल की छाप है ग्रौर उनके साथ ग्रापने कार्य करके ग्रपनी खोज को प्रामाणिक बनाया है। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' लिखकर उस काल का सुन्दर चित्र उपस्थित किया। इस युग के इतिहास लेखकों में महाराजकुमार डा० रघुवीर सिंह तथा श्री राहुल सांकृत्यायन का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराज कुमार डा० रघुवीर सिंह का 'पूर्व मध्यकालीन भारत' एक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ है। मुस्लिम कालीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाली श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित 'मुगल साम्राज्य का क्षय ग्रौर उसके कारण' एक सुन्दर कृति है। इसमें रोचकता की मात्रा सामान्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से ग्रधिक परिमाण में पाई जाती है। डा० प्राणनाथ का 'इंग्लैण्ड का इतिहास'; कालिदास कपूर का 'भारतीय इतिहास पर स्फुट विचार'; कृष्ण विहारी मिश्र का 'चीन का इतिहास'; श्री सम्पूर्णानन्द की 'चीन की राज्य क्रान्ति'; श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे का 'एशिया जागरण'; गोपाल दामोदर तामस्कर का 'मराठों का उत्थान ग्रौर पतन' तथा 'शिवाजी की योग्यता' ग्रादि इतिहास की पुस्तकें हिन्दी साहित्य को ग्रमर देन हैं। श्री सुन्दरलाल जी लिखित भारत में 'ग्रंग्रेजी राज' नामक विशाल ऐतिहासिक पुस्तक हिन्दी की एक ग्रपूर्व पुस्तक है। ग्रंग्रेजी शासन का इसमें सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी के इतिहास साहित्य में ग्रनूदित पुस्तकों का भी ग्रभाव नहीं है। उच्च कोटि की लगभग ५० ऐतिहासिक पुस्तकों का हिन्दी में ग्रनुवाद हो चुका है। ग्रंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगला, ग्रादि भाषाग्रों से ये सब ग्रनुवाद हुए हैं।

जीवनी तथा ग्रात्मचरित के क्षेत्र में भी इस युग में ग्रच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पं० ग्रम्बिकादत्त व्यास की ग्रात्मकथा के बाद भाई परमानन्द की ग्रापबीती, महात्मा गांधी की ग्रात्मकथा का ग्रनुवाद, पंडित नेहरू तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद की ग्रात्मकथाग्रों के हिन्दी ग्रनुवाद ग्रात्मचरित साहित्य को समृद्ध करने वाले ग्रन्थ हैं। डा० राजेन्द्र प्रसाद की ग्रंग्रेजी पुस्तक 'डिवाइडेड इंडिया' का हिन्दी ग्रनुवाद 'खंडित भारत' तथा श्री पट्टाभि सीतारमैया लिखित 'कांग्रेस का इतिहास' ग्रंग्रेजी से ग्रनुवाद होने पर भी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाली पुस्तकें हैं।

संस्मरण, जीवनी तथा ग्रात्मचरित के क्षेत्र में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी की सेवाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चतुर्वेदी जी की शैली चुस्त ग्रौर कसी हुई होने के साथ ऐसी मार्मिक है कि वह सम्बद्ध व्यक्ति के जीवन-रहस्य को खोलती हुई पाठक के समक्ष बड़े ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती है। 'कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी' उनकी एक सफल तथा पथ-प्रदर्शक रचना है। जीवनियों में नवीन

शैली का आभास देने वाली हिन्दी की एक कृति का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूं । वह है श्रीमती शिवरानी देवी लिखित 'प्रेमचन्द घर में' नामक अमर कृति । प्रेमचन्द जी के जीवन सम्बन्धी ऐसी अनेक घटनाएं इस जीवनी में लेखिका ने संकलित की हैं कि पुस्तक को एक बार उठाकर अन्त तक पढ़े बिना रखना कठिन है । हिन्दी में यह अपने ढंग की पहली और सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है ।

आत्मकथाओं में भी जीवनी का ही विशिष्ट रूप होता है । अतः आत्मकथा और जीवनी एक दूसरे की पूरक ही है। हिन्दी में डा० श्यामासुन्दर दास लिखित 'मेरी आत्म कहानी'; श्री वियोगी हरि का 'मेरा जीवन प्रवाह'; स्व० भवानीदयाल संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा'; आचार्य द्विवेदी जी की 'आत्मकथा सम्बन्धी स्फुट प्रसंग'; इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'आत्म-संस्मरण' उच्च कोटि की पुस्तकें हैं ।

संक्षेप में हिन्दी गद्य के अविर्भाव काल से लेकर आज तक हिन्दी में जीवनी और इतिहास विषयक सैकड़ों पुस्तकें लिखी गई । ज्यों-ज्यों गद्य शैली का विकास होता गया, इतिहास की पुस्तकों का प्रणयन हिन्दी में बढ़ता गया । आज तो विश्व-विद्यालयों के इतिहास अध्यापक भी अपनी अंग्रेजी पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करने में लीन है । आशा है ज्यों-ज्यों हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में सुदृढ़ और सुस्थिर होती जाएगी, इस दिशा में भी उसका साहित्य समृद्ध होगा ।

M52Mof I&B—10,000—3-1-59—GIPF.